RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-02
Issue-12
December-2017

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com

सांख्य दर्शन में विकासवाद

Dr Seema Sinha

Dept. of Philosophy, V.K.S.U., Ara, Bihar

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 31 December 2017

Keywords
सृष्टि का विकास प्रकृति पुरुष सत्कार्यवाद, पांचतन्मात्राआ, पंचमहाभूत

ABSTRACT

इस अनुसंधान से विश्व की उत्पत्ति कैसे हुई, कल भी क्या विश्व का यही स्वरूप था जो आज है या फिर यह मनुष्य के सदियों से चले आ रहे विकास का प्रयत्न का परिणाम है। सांख्य दर्शन का विकासवाद विकासवादी सिद्धांतहै। सांख्य इसे विकास का परिणाम मानता है इनका कहना है कि संसार की उत्पत्ति विकास के द्वारा होती है। इसके विकासवाद की पृष्ठभूमि में इसका सत्कार्यवादा सिद्धांत है, जिसके अनुसार कार्य उत्पत्ति के पूर्व अपने कारण में अव्यक्त रूप में विद्यमान रहता हैद्य यह विकास प्रकृति और पुरुष के संयोग का फल है।

Introduction

सांख्य दर्शन के अनुसार संपूर्ण सृष्टि उत्पत्ति एवं विकास के पूर्व एक मूल कारण में विद्यमान रहती है सृष्टि के पूर्व प्रकृति के सभी गुण साम्यावस्था में रहते हैं गुणों की सम्मिलित मात्रा ना घट सकती है ना बढ़ सकती है। उत्पत्ति नई सृष्टि नहीं है बल्कि अभिभाव मात्र है। प्रकृति और पुरुष का सानिध होने पर गुणों की साम्यावस्था में विकार उत्पन्न होता है। इसे गुण क्षोभ कहा गया है। इस अवस्था में उथल–पुथल मचती है प्रकृति के गुण आपस में मिलते हैं तथा इसके संयोग से सांसारिक विषय उत्पन्न होता है। इस संबंध में दो प्रकार की मान्यताएं प्रचलित है।

1. सृष्टिवाद
2. विकासवाद

सृष्टिवाद के अनुसार विश्व की उत्पती ईश्वर की इच्छा के फलस्वरूप एकाएक हुई है ईश्वरचुकी सर्वशक्ति संपन्न है इसलिए उसे विश्व की उत्पत्ति में कोई विलंब नहीं होता उसकी इच्छा होती है कि विश्व बने और क्षणभर में विश्व निर्मित हो जाता है किंतु विकासवाद का कहना है कि विश्व लाखों वर्षों के क्रमिक विकास का परिणाम है विश्व की उत्पत्ति एकाएक नहीं हो जाती । सर्वप्रथम पृथ्वी गोलेकेरुप में थी उस समय इस पर कोई जीव नहीं रह सकता था। धीरे–धीरे विकास क्रम में पृथ्वी ठंडी होती गई और इस पर अत्यंत सूक्ष्म एवं सरल जीव की कोशिकाएं दीख पड़ी। इन्हीं कोशिकाओं से विकसित होकर विभिन्न प्रकार के जीव बने। इस प्रकार क्रमिक विकास के स्वरूप का विश्व का निर्माण हुआ,

सांख्य दर्शन एक और पुरुष को चेतन एवं निष्क्रिय मानता है वही प्रकृति को अचेतन एवं सक्रिय मानता है अब हमारे मन में यह प्रश्न उठता है कि प्रकृति और पुरुष दोनों विरोधी धर्म रखते हुए आपस में सहयोग कैसे कर पाते हैं। इसके उत्तर में संख्या दर्शन का कहना है कि प्रकृति और पुरुष आपस में पारस्परिक सहयोग के द्वारा विकास प्रक्रिया आरंभ करते हैं विश्व के विकास के मूल में दोनों के अपने–अपने उद्देश्य निहित है इसे समझाने के लिए सांख्य दर्शन में बड़ा ही रोचक दृष्टांत का सहारा लिया है

इनके अनुसार जंगल के कठिन रास्तों को पार करने के लिए जिस प्रकार एक अंधे और एक लंगड़े को एक दूसरे की सहायता करनी होती है और दोनों एक दूसरे के पारस्परिक सहयोग एवं आपसी सुझ–बूझ के द्वारा जंगल के कठिन रास्तों को तय कर लेते हैं उसी प्रकार प्रकृति एवं पुरुष पारस्परिक सहयोग से इस विशाल विश्व का निर्माण कर लेते हैं। जितनी भी सजीव ऐवे निर्जीव पदार्थ है इसका विकास धीरे–धीरे समय के साथ हुआ है।

प्रकृति तो सदा गतिशील है प्रकृति की वक्षस्थल में सत्रज् और तम् तीनों गुण सम्यावास्था में रहते हैं। जब प्रकृ ति और पुरुष का सहयोग होता है तबसम्यावास्था भंग होने लगती है सर्वप्रथम रजोगुण सक्रिय होता है तब अन्य दोनों गुण भी सक्रिय होता हैं प्रत्येक अन्य गुणों पर अपना अधिपत्य जमाना चाहता है इस प्रकार इन तीनों नेन्यूनाधिक मात्रा में मिलने से विश्व की प्रक्रिया आरंभ होती है और विभिन्न पदार्थों की उत्पत्ति होती है।

सांख्य दर्शन के अनुसार संसार का विकास प्रकृति और पुरुष के सहयोग से होता है किंतु पुरुष बिल्कुल ही निष्क्रिय रूप में एक द्ष्टाके रूप में कार्य करता है जितने भी परिवर्तन या विकास होता है वे प्रकृति में ही संभव है इसलिए सांख्यादर्शन प्रकृति के विकास के लिए 24 पदार्थों का विकास बतलाकर इसकी सहायता से विश्व की व्याख्या करता है।

महत् यह प्रकृति का सबसे बड़ा विकार है वह जगत की दृष्ट से विराट्बिज स्वरूप है अतएव महत्व कहलाता है क्योंकि इसका स्वरूप अत्यंत सूक्ष्म होते हुए यह मनुष्य की तेजस्विता का प्रतीक है। यह सभी जीवो में वर्तमान होने के कारण ही ज्ञाता और ज्ञेय के संबंध को माना जाता है। बुद्धि में तत्व मे

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

गुण की प्रधानता होती है बुद्धि बीज के रूप में कारण रूप में रहती है जो कार्य के रूप में प्रस्फूटित होतीहै। विज्ञान भिक्षु का कहना है। बुद्धि कभी निरर्थक नहीं है। इसमें सभी संस्कार रहते हैं स्मृतियों का घर बुद्धि ही है अहंकार या मन नहीं।

पुरूष और प्रकृति के संपर्क में निम्नलिखित तत्त्व का क्रमिक विकास होता है

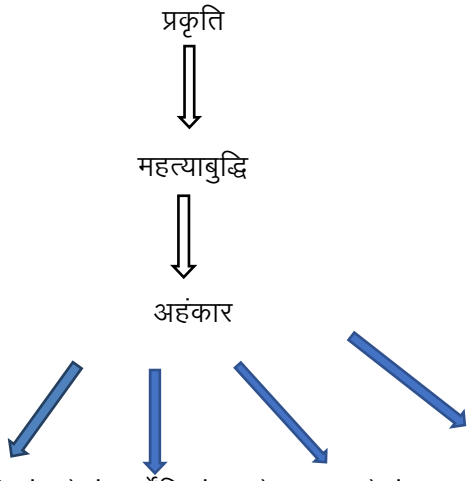

पंचमहाभूत

पंचमहाभूत (पृथ्वी जल वायु अग्नि और आकाश) बुद्धि के बाद विकास क्रम में अहंकार का उदय होता है मैं और मेरा या अभिमान का भाव ही अहंकार है इसी अहंकार के चलते मनुष्य संसार की वस्तुओं पर अपना आधिपत्य जमाने लगता है। सांख्य दर्शन का कहना है। कि एक कुम्हार के मन में यह विचार उत्पन्न होता है कि मैं बर्तन बना हूं यहां मैं का भाव अहंकार है मन सात्विक अहंकार का परिणाम है जिसमें रजोगुण की प्रधानता रहती है विज्ञान पर भिझु यह स्वीकार करते हैं कि 5^{th} तन्मात्राओं की उत्पत्ति तामस अहंकार से होती है।

पांच ज्ञानेंद्रियां

ज्ञानेंद्रियां बुद्धि इंद्रियां भी कहलाती हैं इन तत्वों का कार्य आंख से रुप, कान से शब्द नाक से गंध जीभ से स्वाद तथा चमड़े से स्पर्श का ज्ञान होता है।

पांच कर्मेंद्रियां अहंकार से पांच कर्मेंद्रियां उत्पन्न होती हैं मन सभी इन्द्रियों में मुख्य एवं सूक्ष्म है यह सभी इंद्रियों का केंद्र बिंदु है मन से ही विभिन्न इंद्रियों का संपर्क होता।

पांच तनमात्र–तामसिक अंहकारसे 5 तन्मात्र उत्पन्न होती हैं यह अत्यधिक सुक्ष्म होने के कारण केवल योग्यता द्वारा ही प्रत्यक्ष रूप से जाने जाते हैं। साधारण मनुश्य अनुमान के आधार पर जान पाते हैं

पंचमहाभूत

तन्मात्राओं से ही महाभूतो का अभिभाव होता है। तन्मात्राएं अत्यंत सूक्ष्म होते हैं, किंतु महाभूत स्थूल होते हैं शब्द और स्पर्श तन्मात्राओ के योग से "हवा उत्पन्न होती है शब्द से स्पर्ष और रुप तन्मात्राओ से अग्नि या तेज उत्पन्न होता है शब्दस्पर्शऔर रसतन्मात्राओं से "जल" उत्पन्न होता है। शब्द स्पर्श रूप रस और गंधतन्मात्राओ से "पृथ्वी" उत्पन्न होती है विकास कारण प्रकृति से होता है और पंचमहाभूत में जाकर इसका अंत हो जाता है इस प्रकार सांख्य काविकासवाद सूक्ष्म से प्रारंभ होकर स्थूल की ओर बढ़ता है प्रकृति एवं पंचमहाभूत के मध्य बुद्धि, अहंकार मन पांच ज्ञानेंद्रियां तथा पांचकर्मेंद्रियां एवं पंचमहाभूत आते हैं इस प्रकार के विकास क्रम में 24 सोपन है।

संख्या के अनुसार विकास क्रम पंचमहाभूत पर आकर रुक जाता है। विश्व के विभिन्न पदार्थ पंचमहाभूत से विकसित नहीं होते बल्कि इसके संयोग से निर्मित होते हैं। पंचमहाभूत में विश्व की वस्तुयें बनती है। और नष्ट होने में पुनः महाभूतों में विलिन हो जाती हैं।

समालोचना

अब हम समालोचनात्मक दृष्टि से संटय के विकासवाद को देखेंगे तो पाएंगे कि सांख्य दर्शन भारतीय दर्शन में अपना एक महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट स्थान रखता है सृष्टिवादकेस्थान पर विकासवाद का नारा बुलंद करके अपने को अन्य विचारधाराओं से पृथक एवं अनूठा बना दिया है। फिर भी इसके विरूद्ध आक्षेपउठाते हुए कहा जाता है कि विकास का आधार प्रकृति और पुरुष के बीच संबंध दर्शन ने जिनउपमाऐसहारा लिया है वेउपमाऐ उपयुक्त नहीं है। यहां अंधा और लंगड़ा दोनों ही चेतन है जबकि प्रकृति यहां अचेतन है। सिफ पुरुष ही चेतन है। साथ ही अंधे और लंगड़े का उद्देश्य भी एकनहीं है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि संख्या विकासवाद की उचित व्याख्या नहीं कर पाता जिसका मूल कारण उसका द्वैतवाद है।

इन त्रुटियों के बावजूद सृष्टिवादके स्थान पर आज विकासवाद का ही बोलबाला है। आज का हमारा वैज्ञानिक युग विश्व की उत्पति एकाएक नहीं मानता बल्कि युगांतर से चली आ रही विकास परंपरा का परिणाम मानता है विश्वरूप सदैव बदलता रहता है विश्व सरिता की तरह है जिसकी सभी तरंगे एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं।

Conclusion

विकास की यह परंपरा कभी रुकने वाला नहीं बल्कि कभी न सूखने वाली नदी की तरह अनवरत प्रवाहसील हैं। जिस प्रकार वृक्ष से फल निकलते हैं यह बछड़े के पोषण के लिए गौ के स्तन से दूध रहता है उसी प्रकार प्रत्येक वस्तु चेतन रूप से पुरुष के संयोग को ही पूर्ण करती है संयोजन

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

को ही पूर्ण करती है चाहे वह भोग हो या मोक्ष सांख्य का पुरुष जो कारण और कार्य से परे है किंतु विकास का निमित्त कारण और प्रयोजन कारण दोनों है।

संदर्भ सूची

1) सांख्य दर्शन में विकासवाद– डॉ डी सिंह (रिव्यु ऑफ पॉलिटिक्स) 2014 Jan-June
2) विकासवाद की अवधारणा – डॉ केएनझा (नव आर्थिकी) 2011 शरद अंक
3) भारतीय दर्शन दृ चटर्जीऔर दत्त (तृतीय संस्करण)
4) भारतीय दर्शन की रूपरेखा – हरेंद्र प्रसाद सिन्हा (चतुर्थ संस्करण)

© RRIJM 2015, All Rights Reserved